स्कूल में पहली पीढ़ी के बच्चों का शिक्षण | मुख्य सबक

विद्या दास

बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे, वे ऊर्जा से भरे हुए थे और हरगिज़ अपनी सीटों पर बैठना नहीं चाहते थे, हालाँकि उनमें से सभी इधर-उधर भाग नहीं रहे थे। केवल पाँच या छह बच्चे चुलबुले थे और शोर मचा रहे थे। जब मैं जाकर शान्त बच्चों के पास बैठ गई तो चुलबुले बच्चे मेरे पास आकर अपना लिखित कार्य दिखाने लगे। उनमें से कई बच्चे मेरा ध्यान आकर्षित करने के लिए इतनी जल्दी में थे कि उन्होंने अपना काम भी पूरा नहीं किया था। मैंने सख़्ती से उनसे कहा कि जब उनकी बारी आएगी तब मैं उनका काम देखूँगी। सबसे छोटे वाले बच्चे ने मुझे अपनी सीट की ओर खींचने की कोशिश की। एक अन्य बच्चे ने उसे समझाया कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि मैं उनकी गुरु माँ (मुख्य शिक्षिका) हूँ। वह छोटा बच्चा रुक गया तथा वे सभी वापस अपने-अपने स्थानों पर चले गए।

मैं अग्रगामी स्कूल की दूसरी कक्षा में थी, जो जनजातीय क्षेत्र के पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चों के लिए है, जिन्हें आमतौर पर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के रूप में जाना जाता है। हालाँकि बच्चे जन्म लेते ही सीखना शुरू कर देते हैं, लेकिन इन बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि उनके माता-पिता कभी स्कूल गए ही नहीं हैं। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में जब शिक्षक ज़बरदस्ती उन पर अकादमिक कौशल लादने का प्रयास करते हैं तो वे अकसर, लगभग पूरी तरह से दब्बूपन की हद तक विनम्र बन जाते हैं। जबकि अन्य मौकों पर वे कुछ सीख ही नहीं पाते, क्योंकि शिक्षक यह मान लेते हैं कि यह बच्चे तो सीख ही नहीं सकते और अपने प्रयास करना बन्द कर देते हैं। और यह भी असामान्य नहीं है कि दोनों स्थितियाँ एक साथ बनें : एक तो बच्चे सीख नहीं पाते और इसके साथ ही बच्चों को भय, हीनता और दब्बूपन की ओर धकेल दिया जाता है। अग्रगामी स्कूल का प्रयास होता है कि वह इन बच्चों को बिना किसी डर या तनाव के सीखने में मदद कर सके।

पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चों के शैक्षिक कौशलों का निर्माण करने में उनकी मदद करने के दौरान कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिसे आज ज़्यादा पहचाना जा रहा है, जबकि शिक्षा तंत्र अभी भी अपना ज़्यादातर ध्यान नामांकन, ड्रॉपआउट और शौचालय पर ही केन्द्रित करता है। इन मात्रात्मक संकेतकों का महत्व तभी तक है जब तक हम उनमें से अधिकांश को शिक्षा का लक्ष्य न मान लें। उदाहरण के लिए, सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार अब हमारे पास लगभग सौ प्रतिशत नामांकन दर है, लेकिन यदि अधिगम-स्तर निराशाजनक हो तो नामांकन का क्या मतलब है? प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी करने तक बहुत सारे बच्चे पढ़ तक नहीं पाते! और उस चरण में बाक़ी बच्चों में से भी अधिकांश की पठन क्षमता बहुत ही कम होती है।

अधिकांश स्कूली शिक्षा तब शुरू होती है जब बच्चा काफ़ी हद तक धाराप्रवाह पढ़ सके। अगर कोई बच्चा धाराप्रवाह नहीं पढ़ सकता और जो पढ़ रहा है उसे समझ नहीं पा रहा तो स्कूली शिक्षा शुरू ही नहीं हो पाती क्योंकि स्कूल में लगभग सब कुछ किताबों से ही पढ़ाया जाता है। इसलिए किसी भी विषय को सीखने के लिए पढ़ना आना चाहिए। यदि कोई बच्चा, समय पर, अच्छी तरह से पढ़ने में सक्षम नहीं है तो वह समान अवसरों से वंचित हो जाता है। धीर झींगरन[i] इस सब पर काफ़ी ज़ोर देते हैं। वे बताते हैं कि पढ़ना एक मूलभूत कौशल है, जिस पर सारी औपचारिक शिक्षा निर्भर करती है। अगर कोई बच्चा जल्दी और अच्छी तरह से पढ़ना नहीं सीखता है तो वह आसानी से अन्य कौशलों तथा ज्ञान में महारत हासिल नहीं करेगा और स्कूल में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाएगा। वे आगे बताते हैं कि जो बच्चे बाद में पढ़ना या धीरे-धीरे पढ़ना सीखते हैं, वे पढ़ने से बचने की कोशिश करते हैं। ऐसे बच्चे अपनी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों को समझने में असमर्थ होते हैं, जिससे उनके मन में स्कूल के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है और ऐसे बच्चों की स्कूली पढ़ाई पूरी होने की सम्भावना कम ही होती है।

इस प्रकार, अकसर पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चे (फ़र्स्ट जेनेरेशन स्कूल चिल्ड्रन - एफजीएस) अगर स्कूल में दाख़िला लेते भी हैं तो जल्दी ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। प्राथमिक विद्यालय में यह अन्तर और अधिक नज़र आता है। रिपोर्टों से पता चलता है कि स्कूल में, एफजीएस बच्चों की उपस्थिति कम होती है, उनका प्रदर्शन एक-सा नहीं होता, उनकी पढ़ाई में बाधा पड़ती है और उनका आत्म-सम्मान कम होता है। अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों के सामने कई समस्याएँ आती हैं जैसे पाठ्यक्रम सम्बन्धी मुद्दे, गृहकार्य पूरा करने में कठिनाई का अनुभव, समय-सारिणी और शिक्षण के साथ समायोजन न कर पाना आदि। ग़ैर-एफजी विद्यार्थियों

[i] रिटायर्ड सिविल सर्वेंट, लैंग्वेज एण्ड लर्निंग फाउण्डेशन के संस्थापक निदेशक

की तुलना में एफजी के दोगुने से अधिक विद्यार्थी स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित ऐसी ही समस्याओं का सामना करते हैं। अध्ययन यह भी बताता है कि एफजीएस बच्चों के परिवारों का जीवन स्तर भी समुचित नहीं होता है। यह बात निर्विवाद है कि एफजीएस बच्चों के परिवारों के ख़राब जीवन स्तर और उसके परिणामस्वरूप गुज़ारा करने के संघर्षों से जूझते रहने के कारण बच्चों को स्कूल में कई बाध्यताओं और मजबूरियों का सामना करना पड़ता है। इन बच्चों को पढ़ाई के दौरान काम करने के लिए समय निकालना पड़ सकता है और उनके लिए कोर्स-सामग्री, स्टेशनरी और निजी ट्यूशन की कक्षाओं के लिए खर्च करना भी सम्भव नहीं होता।

अन्ततः एफजीएस बच्चों को अपने अन्य भाग्यशाली साथियों की तुलना में स्कूल में प्रतिकूल वातावरण का सामना करना पड़ता है। कई तुलनात्मक रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि उनमें से अधिकांश बच्चे यह अनुभव करते हैं कि उनके शिक्षक और प्रधानाध्यापक उनकी उपेक्षा करते हैं और उनके प्रति उदासीन हैं। इससे उनके आत्म-सम्मान को तो चोट पहुँचती ही है पर साथ ही उनकी महत्वाकांक्षा भी प्रभावित होती है जो उनके ड्रॉपआउट की उच्च दरों का एक कारण हो सकती है। तब यह एक विषम चक्र बन जाता है: एफजीएस बच्चों को अपने माता-पिता से पर्याप्त शैक्षिक सहायता नहीं मिलती है, इसलिए वे अच्छी स्कूली शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं और इसलिए वे अपने स्वयं के बच्चों को स्कूल में अच्छी तरह से पढ़ाई करने में मदद नहीं कर सकते। लड़कियों की स्थिति तो और भी बदतर है और इस बात का सबूत यह है कि जनजातीय लड़कियों और महिलाओं में सबसे कम साक्षरता है।

इस कड़ी को कोई कैसे तोड़ सकता है? अधिकांश ग़ैर-एफजीएस परिवारों में (जिसमें माता-पिता और/ या दादा-दादी ने कम से कम हाई स्कूल तक पढ़ाई की है), वयस्क लोग बच्चे को अक्षर-ज्ञान, गिनती और संख्याओं जैसे स्कूली अधिगम के शुरुआती कौशल सिखाते हैं। ज़्यादातर ऐसा घर पर ही किया जाता है जहाँ घर का कोई सदस्य बच्चे को पढ़ाता है। जैसे माता-पिता या कोई बुज़ुर्ग रिश्तेदार बच्चे को अक्षर सिखाता है, उसे भाषा के अक्षरों को पहचानने और लिखने के लिए प्रोत्साहित करता है, वस्तुओं के नामों अथवा परिवार के सदस्यों के नामों की वर्तनी सिखाता है आदि। इसके अलावा इन घरों में मुद्रित सामग्री भी होती है और बच्चे माता-पिता और परिवार के पढ़ना जानने वाले अन्य सदस्यों के साथ किताबें, समाचारपत्र, कैलेंडर पढ़ने का प्रयास करते हैं, उन्हें दिलचस्प एवं छोटे-छोटे समाचार पढ़ कर सुनाये जाते हैं, इत्यादि। किसी भी चिह्नित शिक्षणशास्त्र से अधिक मदद इस बात से मिलती है कि माता-पिता बड़े प्यार और सरोकार के साथ बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देते हैं, बच्चों को उनकी देखभाल और दृढ़ाग्रह से भरा माहौल मिलता है। इसलिए स्कूल जाना शुरू करने तक ग़ैर-एफजीएस बच्चे पढ़ना-लिखना सीख जाते हैं और उन्हें अपने एफजीएस साथियों की तुलना में स्पष्ट रूप से लाभ होता है। अग्रगामी का अनुभव बताता है कि इससे दूसरी पीढ़ी के स्कूली बच्चों को भी मदद मिलती है। अपने एफजी साथियों की तुलना में शुरुआती कक्षाओं में उनका अधिगम स्तर काफ़ी बेहतर होता है।

सामान्यतः शिक्षक बच्चों को इन कौशलों को सिखाने की तकनीकों से लैस नहीं होते हैं। शिक्षक-शिक्षा के अधिकांश पाठ्यक्रमों में बच्चों को पढ़ना सिखाने के शिक्षणशास्त्र पर बहुत कम चर्चा की गई है और साथ ही किंडरगार्टन और पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तकों का डिज़ाइन भी ऐसा नहीं है जो बच्चे को धाराप्रवाह पढ़ने के कौशल विकसित करने में मदद करे।

इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, अग्रगामी स्कूल में उन जटिल समस्याओं को सम्बोधित करने पर ध्यान दिया गया है जो एफजीएस बच्चों की स्कूली शिक्षा को प्रभावित करती हैं। यह विकसित होता शिक्षणशास्त्र, कई तरह से शिक्षकों की मदद करने का प्रयास करता है जैसे उन बाधाओं और चुनौतियों को समझना जिनका सामना बच्चे करते हैं, उनके अधिगम सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर विचार करना (जिसमें उपस्थिति, स्वास्थ्य, स्कूल में सहज अनुभव करना, जो सिखाया जा रहा है उसे समझना, संलग्नता, ध्यान केन्द्रित करना आदि शामिल हैं), और इन्हें सम्बोधित करने के लिए दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली विकसित करना। यह शिक्षणशास्त्र पारम्परिक दृष्टिकोण और विधियों से आगे जाकर शिक्षकों को समाधान खोजने के लिए प्रोत्साहित करता है और साथ ही बदलते हुए प्रतिमान को समझने में भी मदद करता है ताकि वे मौलिक नवीन उपागम को समझ सकें और उसे अपने शिक्षण-अभ्यास में शामिल कर सकें।

ऐसा ही एक बदलाव भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में किया गया है। स्कूल में भाषा शिक्षण बच्चे को पढ़ना सिखाने के साथ शुरू होता है जिसमें बच्चे को पारम्परिक रूप से अक्षरों को उनकी विभिन्न आकृतियों के साथ याद करना पड़ता है जो कि बच्चे के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। इसका मतलब है करीब 50 असंगत प्रतीकों के रूप और ध्वनि को याद रखना, जो तब तक काफ़ी अर्थहीन होते हैं जब तक कि बच्चा अपने द्वारा बोले जाने वाले शब्दों का सम्बन्ध अक्षरों के साथ नहीं समझ लेता। कम साक्षरता के कारण प्रारम्भिक शिक्षा में इसलिए बाधा पड़ती है क्योंकि साक्षरता-शिक्षण वर्णमाला को ज़बरदस्ती याद कराने के साथ शुरू होता है और बच्चे के संज्ञानात्मक संकायों को संलग्न नहीं करता। वर्णमाला या वर्णमाला केन्द्रित विधियों के माध्यम से बच्चे में पठन और भाषा कौशल विकसित करना एक नकारात्मक और कठिन कार्य है, क्योंकि बच्चा जो कुछ भी जानता है उनसे वर्णमाला के प्रतीकों का कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

जब समय के साथ-साथ यह साबित हो गया कि यह पद्धति प्रभावकारी नहीं है (तब तक हमने अनेक बच्चों के कई

साल बर्बाद कर दिए थे), तब एक बदलाव के बारे में सोचा गया जिसमें बच्चों को शब्द एवं वर्णमाला के सम्बन्ध (जैसे 'ए' फॉर ऐप्पल इत्यादि) के माध्यम से सीखने में मदद की गई। अँग्रेज़ी की तुलना में ध्वन्यात्मक रूप से अधिक विस्तृत (और शायद अधिक सटीक) लिपियों वाली भाषाओं में, इसे सिखाना आसान बनाने के लिए कई कविताएँ लिखी गई हैं, फिर भी, बच्चे पढ़ना नहीं सीख पाए क्योंकि सिखाने के यह तरीक़े शिक्षकों को बेहद मुश्किल लगे। इस पद्धति में अधिगम के स्पष्ट तर्क का भी अभाव है क्योंकि अक्षर 'ए' केवल शब्द के पहले वर्ण का प्रतीक है और बच्चे को शब्द के बाक़ी अक्षरों की ध्वन्यात्मकता से जुड़ना मुश्किल लगता है।

इस समस्या से निपटने के लिए हमने समग्र भाषा दृष्टिकोण को अपनाने की सोची। जब बच्चा स्कूल आता है तो वह एक भाषा जानता है। इसका मतलब है कि उसके पास कम से कम 1500 से 2000 शब्दों की शब्दावली होती है और वह सम्प्रेषण के लिए इस शब्दावली में से शब्द चुनने और उसे अनुक्रमित करने का तरीक़ा जानता है। वह आदेश से लेकर प्रश्न व प्रश्न से लेकर भावनाओं, घटनाओं का वर्णन एवं कहानियों से जुड़े अर्थों की एक पूरी श्रंखला के सम्प्रेषण के लिए और उसे समझने के लिए इसका प्रयोग भी करता है। वह सरल गीत और कविताओं को समझ सकता है, उनका आनन्द ले सकता है, उन्हें गा सकता है, अतीत, वर्तमान और भविष्य काल को समझ सकता है और क्रोध, दुःख, सुख जैसे अमूर्त अर्थों को समझ और समझा सकता है। वह परिवार के सदस्यों और गाँवों के नाम भी याद कर सकता है और उन्हें समझकर उस जगह या व्यक्ति को पहचान सकता है। यह सब ऐसे कौशल हैं जो बुनियादी साक्षरता या पढ़ने और लिखने के लिए आवश्यक कौशलों से कहीं अधिक जटिल हैं।

फिर हमने खुद से पूछा : जब बच्चा स्कूल आना शुरू करता है तो क्या सीखने-सिखाने के लिए उसके इस ज्ञान और क्षमता को आधार बनाया जा सकता है? शिक्षक पहली बार स्कूल जाने वाले बच्चे की भाषा सीखने में मदद करने के लिए इन तरीक़ों को अपना सकते हैं जैसे- उसकी स्लेट पर फूलों, सब्ज़ियों आदि की साधारण आकृतियाँ बनाना, फिर कविताएँ और एक्शन गीत सिखाना, बच्चे के नाम से शुरुआत करके उसके परिचित लोगों के नामों तक जाना, फिर शब्द-चित्र, छोटे वाक्य और उसके दैनिक जीवन की अन्य चीज़ों और फिर उसकी परिचित कविताओं को लिखना आदि। अगर बच्चा अपना नाम और फिर अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि के नाम लिखकर सीखना शुरू करता है, तो उसका स्कूल एवं कक्षा से तुरन्त जुड़ाव हो जाता है और उसमें उत्साह का भाव पैदा होता है। जब वह घर जाता है और यह नाम लिखकर अपने परिवार के सदस्यों को दिखाता है तो उसे सकारात्मक समर्थन मिलता है जो उसके कक्षा-अधिगम को बेहद सार्थक बनाता है तथा वह और अधिक सीखने के लिए स्कूल व कक्षा में वापस आने के लिए प्रोत्साहित होता है।

प्रारम्भिक कक्षा के शिक्षकों के साथ कई सत्रों में इन विचारों पर चर्चा की गई। कई महीनों तक इन विषयों पर औपचारिक और अनौपचारिक चर्चाएँ हुईं जैसे बच्चों को प्रभावी रूप से साक्षर बनाने में आने वाली समस्याएँ, उनके कारण, बच्चों की अनुक्रिया, स्कूल आने पर आदिवासी बच्चों के सामने आने वाली भाषा सम्बन्धी समस्याएँ आदि। शिक्षकों ने रटकर याद करने की बजाय बच्चों को परिचित शब्दों के माध्यम से सीखने में मदद करने के लिए शब्दावली के सेट और शिक्षण-सामग्री विकसित की।

फिर भी, कक्षाओं में शिक्षक पारम्परिक वर्णमाला-केन्द्रित तरीक़ों को ही अपनाते रहे और बहुत कम परिवर्तन हुआ। भाषा-शिक्षण को रचनात्मक और बाल-केन्द्रित तरीक़े में बदलने के बारे में इतनी सारी चर्चा और समझ के बाद भी शिक्षकों को ऐसा करना क्यों मुश्किल लगा? पता चला कि बच्चों को प्रतिदिन कक्षा में व्यस्त रखने के लिए शिक्षक इस तरीक़े के लिए संसाधन नहीं खोज पाए। इसलिए वे पुनः याद करने वाले पुराने तरीक़े पर चले गए। कुछ शिक्षकों को यह विश्वास नहीं था कि शुरुआत में सभी अक्षर सीखे बिना ही बच्चे कुछ सीख सकेंगे। कुछ कक्षाएँ द्विभाषी भी थीं, जिनमें लगभग आधे बच्चे आदिवासी भाषा बोलते थे और राज्य की भाषा उड़िया नहीं समझते थे।

आगे और चर्चाएँ हुईं, जिनके बाद सबने मिलकर एक पुस्तक तैयार की जो शिक्षकों को बाल- केन्द्रित शिक्षण का अनुसरण करने में मदद कर सके। इसके अलावा जिन शिक्षकों की प्रथम भाषा आदिवासी थी, उनको ऐसी कक्षाओं में पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया जिनमें आदिवासी बच्चे थे। कई ऐसे प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए गए, जिनमें शिक्षकों ने अपने अनुभव साझा किए कि वे उस पुस्तक का उपयोग कैसे कर रहे थे, शब्द-खेलों और चित्र-खेलों में ज़रूरत के मुताबिक़ बदलाव कर, उनका उपयोग वे विभिन्न मातृभाषाओं वाले बच्चों की मदद करने के लिए कैसे कर रहे थे।

इसके अलावा कक्षा की समस्याओं पर भी चर्चा की गई। इन सत्रों से बच्चों के पास ही मौजूद संसाधनों की पहचान करने में मदद मिली। शिक्षकों ने अपने कुछ अवलोकन भी साझा किए। इनमें प्रमुख बात यह थी कि बच्चे एक-दूसरे की मदद करने के लिए सदा तत्पर रहते थे, उदाहरण के लिए एक बच्चा अपना काम ख़त्म करने के बाद अक्सर अपने साथी की मदद करने लगता था। बच्चे अपने साथियों से सीखने के लिए भी तैयार रहते थे और अपने शिक्षकों से ज़्यादा अपने साथियों की बात सुनते थे। इन चर्चाओं ने बच्चों को बेहतर ढंग से समझने में मदद की और हमारे शिक्षण और टीएलएम में भी सुधार हुआ। पहली पुस्तक के बाद एक वर्कबुक प्राइमर डिज़ाइन की गई जो विद्यार्थियों को रचनात्मक और सृजनात्मक तरीक़ों से जुड़ने में मदद करे और शिक्षकों को ऐसी गतिविधियाँ करने में सक्षम बनाए जो बच्चों को साक्षरता और पढ़ने की दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ने में मदद कर सकें।

पहली कक्षा के लिए बनाई गई वर्कबुक ने चित्रमय प्राइमर के रूप में कार्य किया और बच्चे उसकी ओर आकर्षित हुए। इसमें रंग भरने, चित्र बनाने और शब्द-खेल से भरी हुई गतिविधियाँ थीं, इन रचनात्मक गतिविधियों को बच्चों ने बहुत मगन हो कर किया। प्राइमर ने शिक्षकों की भी मदद की क्योंकि इससे उन्हें आगे के खेल और पहेलियों के लिए तथा ब्लैकबोर्ड गतिविधियों के लिए नए विचार मिले। शिक्षकों ने देखा कि आमतौर पर बच्चों को प्राइमर के अभ्यास पूरा करने के लिए दो साल की आवश्यकता होती है, जिसके बाद वे पढ़ने से सम्बन्धित बुनियादी बातें सीख लेते हैं। बाद की कक्षाओं में बच्चों के पठन की क्षमताओं में सुधार करने के लिए सस्वर पठन, ब्लैकबोर्ड पठन और पठन व बोध के अभ्यास आदि तरीक़े अपनाए गए।

> सभी बच्चे समान गति से नहीं सीखते हैं। अग्रगामी स्कूल में प्रत्येक बच्चे को अपनी गति से सीखने और जैसा कि ऊपर बताया गया है, सीखने में अपने साथियों की भी मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे सामूहिक प्रयास का माहौल बनाता है जिसमें हर बच्चे पर ध्यान दिया जाता है। शिक्षक पाठ की व्याख्या नहीं करते हैं, लेकिन बच्चों को पाठ्यपुस्तक के पाठों को समझने में मदद करने के लिए विभिन्न प्रकार के अभ्यास करवाते हैं जैसे प्रश्न पूछना, शब्दों की पहचान कराना, दृश्य-स्मृति परीक्षण करना आदि। इसमें बच्चे पहले पैरा-दर-पैरा स्व-पठन करते हैं, फिर शिक्षक शब्दों को ज़ोर से बोलते हैं और बच्चे उन्हें पहचानते हैं।

इन सब आसान और मज़ेदार तरीक़ों के माध्यम से अग्रगामी स्कूल के पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को पढ़ने और भाषा-कौशल के निर्माण में मदद मिली है। इसलिए अब बच्चे सभी विषयों को सीखने में उत्सुकता दिखा रहे हैं क्योंकि उन्हें अपनी पसन्द और रुचि के विभिन्न विषयों और टॉपिक को पढ़ने और उनके बारे में जानने-खोजने में आनन्द आता है। इसी प्रकार वे लेखन में भी बहुत रुचि ले रहे हैं। डांगर कथा एक लघु समाचार-पत्रिका है जिसमें गाँव के बच्चों के जीवन की झलक, उनकी कल्पनाओं और अभिलाषाओं एवं बच्चे जिस नज़रिए से चीज़ों को देखते हैं आदि के बारे में लिखा जाता है। बच्चे इसके माध्यम से खुद को अभिव्यक्त करने और अपने स्कूली जीवन की घटनाओं तथा अनुभवों की रिपोर्ट लिखने के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं। शिक्षकों के सुझाव पर अब वे अपने लेखों के साथ जीवन्त और रंगीन चित्र भी बनाने लगे हैं। ड्राइंग और चित्रों के बारे में हमें यह कहते हुए गर्व हो रहा है कि अग्रगामी स्कूल में, बहुत ही कम शिक्षण के साथ, बच्चों की कल्पनाओं को अत्यन्त मुक्त रूप से फलने-फूलने दिया गया है।

इस अनुभव ने अग्रगामी स्कूल को सरकारी स्कूलों तक पहुँचने में मदद की है। इस प्रयास में, जो युवा उपर्युक्त दृष्टिकोण और तरीक़ों में प्रशिक्षित किए गए थे, उन्हें शुरुआती कक्षाओं में अधिगम में सुधार लाने के लिए अठारह सरकारी प्राथमिक स्कूलों में रखा गया। पूर्व अनुभव के साथ-साथ प्रशिक्षण और बुनियादी अवधारणाओं को समझने पर बहुत ज़ोर दिया गया था। जो वर्कबुक प्राइमर बच्चों और प्रशिक्षुओं को प्रदान की गई थी, उसमें अग्रगामी स्कूल में किए गए प्रारम्भिक कक्षा-शिक्षण के कई अवलोकन सत्र भी शामिल थे। ओडिशा के तीन आदिवासी जिलों, कोरापुट, रायगडा और नबरंगपुर, में दो साल की अवधि में किए गए प्रयासों के उत्कृष्ट परिणाम सामने आए। स्वतन्त्र अध्ययनों के अनुसार, दूसरी कक्षा के समाप्त होने तक 83% बच्चे पढ़ सकते थे।

इस अनुभव से हमें वास्तव में बड़े व्यापक स्तर पर सीखने को मिला है और उसके आधार पर हम जिस महत्त्वपूर्ण बात पर ज़ोर देना चाहते हैं वह है शिक्षकों के लिए समर्थन और प्रभावी प्रशिक्षण की आवश्यकता। शिक्षकों की बात सुनने, उन्हें अपनी समस्याओं को समझने और उसका समाधान ढूँढ़ने में पर्याप्त सहायता देने की बहुत आवश्यकता है। सरकारी तंत्र में शिक्षक अधीनस्थ होते हैं, जिनके लिए सेवा के नियमों की पालना और अपने वरिष्ठों की आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता है। जिससे अच्छी शिक्षण-विधियों को विकसित करने और अधिगम के परिणामों को बेहतर बनाने में बाधा पड़ती है। इसके परे जाना और सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को ज्ञान और कौशल के साथ रचनात्मकता की ओर ले जाने में मदद करना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था को देखते हुए यह एक असम्भव विचार लग सकता है। लेकिन अगर हम एक छोटी-सी शुरुआत करें और अपनी पहुँच व उपलब्धियों का विस्तार करें तो शायद हम, सबके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

विद्या दास ग़ैर-लाभकारी संगठन, अग्रगामी में कार्य करती हैं। वे महिला-अधिकार, शिक्षा और आजीविका के क्षेत्र में अपने कार्य के लिए पहचानी जाती हैं। आदिवासी शिक्षा और जनजातीय अधिकारों पर उनके लेखन को व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया है। अग्रगामी के विज़न को ध्यान में रखते हुए वे भूख और अन्यायरहित दुनिया के लिए प्रतिबद्ध है। उनसे vidhyadas@agragamee.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल